कायांतर

जयश्री रॉय

कायांतर

फूलमती को ललिता ने पहली बार सिया सुंदरी के दक्खिन घाट पर देखा था। गौने के बाद बिगेसर के पीछे-पीछे बजरे से उतरते हुए - पीली साड़ी, सुर्ख लहठी और बड़ी-सी

https://www.hindiadda.com/kayantar/

टिकुली में अरहर की पकी बाली-सी झमर-झमर करती। रूपा की बुंदकी सरीखी आँखों में झिलिर-मिलिर कौंध थी, जाने वह डरी हुई थी कि खुश...

जैसे पूरा गाँव ही उतर आया था घाट पर नइकी दुलहिन को देखने। अवधूत की नानी इनमें सबसे आगे थी, अपने पोते की पीठ पर बेताल की तरह सवार होकर टूटे ऐनक की कमान साधती हुई - "हाय दादा! दुलहिन त एकदम करियट्ठी हई।"

लहेरिन सास ने बहू-बेटे के सामने आरती की थाल फिरायी तो बहू खिस्स से हँस पड़ी! बिगेसर ने आँख गरेम कर अपनी मेहरारू की ढलकती घूँघट छाती तक खींची तो गीतहरिन औरतों ने मंगल गीत गाते-गाते एक-दूसरे को टहोके लगाए। उसी दिन से गाँव-जवार में मशहूर हो गया - बिगेसर-बो के लच्छन ठीक न है!

कुछ ही दिनों बाद छत पर दोपहर के घाम में बैठकर गीले बाल सुखाते हुए ललिता ने देखा था - बिगेसर अपनी झोंपड़ी के आँगन में फूलमती को दौड़ा-दौड़ाकर बाँस के फट्टे से पीट रहा है - "ललनवा के संग का कर रही थी रे खचरी, खेसारी के खेत में? जंगल में जिलेबी तोड़ने गई थी कि छिनरई करने?" सरकंडे की टाटी धकेलकर फूलमती 'बाप रे बाप, माई गे माई' करती हुई गोहाल के अंदर भाग गई थी। दूर से ही ललिता ने देखा था, उसका खूने-खून कपार! उधर नीम खैरे बिगेसर की महतारी अपना कपार पीटती हुई थहराकर बैठ गई थी - "अरे अभगला! अब मार-कुटम्मस से का होगा रे! हम त कहबे करते थे कि एकर लच्छन ठीक नहीं है। शहर के लरकी, ठेठर-बैसकोप देखती है, मूरी उघार के बीच बाजार चलती है बेलज्जी! मगर तब त मऊगी के परेम में उभचुभा रहा था! अब भुगतो! भंड़ुअई करे के लेल ई नगरनट्टिन का गौना करा के हमरा माथा पर धर दिया...!"

बिगेसर के दरवाजे पर एक छोटी-मोटी भीड़ जुट गई थी। सब उचक-उचककर अंदर झाँक रहे थे। तमाशा देख रहे थे। सौ-पचास घरों के इस छोटे-से गाँव में ऐसे दृश्य बहुत आम है। रोज ही कोई ना कोई अपनी बीवी-बहू की पिटाई करते हुए दिख जाता हैं। बिगेसर की दुलहिन नई है इस गाँव में, इसलिए लोगों में उसको लेकर थोड़ी बहुत उत्सुकता है। वह भी इन्हीं दो-चार दिनों के लिए।

मगर ऐसे दृश्य ललिता को आज भी उद्वेलित करते हैं। वह शहर की लड़की है - पढ़ी-लिखी! बीए पास है। इस गाँव के मिडिल स्कूल में चौथी से लेकर सातवीं कक्षा के बच्चों को पढ़ाती है। उसका पति त्रिभुवन अदालत में क्लर्क है। रोज शहर आता-जाता है। ललिता इन दिनों उम्मीद से है। कुछ महीनों में उसे प्रसव के लिए मायके जाना है।

इन दिनों वह बहुत भावुक रहती है। बात-बात पर रोना आता है। ऐसी बातें उसे परेशान कर देती हैं।

दूसरे दिन सुबह फूलमती उसके दालान में मसूर फैला रही थी। कल की मारपीट का उसके चेहरे पर कोई चिह्न नहीं था। सुबह की धूप की तरह उजली, झकझक! ललिता के छोटे-मोटे काम वह कर दिया करती है। काम से ज्यादा बात करती है। हाथ के साथ मुँह भी चलता रहता है उसका पटर-पटर। कितनी सारी बातें उसकी - "सुना आप इंगरेजी पढ़े हैं! आपको मोटर चलाना आता है? एक बार हमको भी सैर कराईएगा मोटर में?" ललिता स्वेटर बुनती हुई उसके चेहरे की कादो-सी रंगत पर धूप की झिलमिल देखती रही थी। जाने गरीब किस खुशी में यूँ छलकी पड़ रही थी!

"तुझे तेरे पति ने मारा ना कल?" ललिता के सवाल पर फूलमती सकुचा कर सूप फटकने लगी थी - "वो जरा... का है ना, फलानाजी को गुस्सा बहुत आता है, हथछुट्टा है जरा..." उसका संकोच देख कर ललिता ने बात बदल दी थी।

फूलमती उनके घर रोज आती है काम के लिए। कभी ढेकी में धान-चावल कूटना तो कभी गोबर पाथना। धूप के आँगन छोड़ने तक काम करती है और जब अनाज की कोठरी का अनगढ़ साया आँगन के सहजन को धीरे-धीरे सँवलाने लगता है, कुएँ की जगत पर बैठकर अपना आँचल पसारकर वह ललिता की सास से रोटी, गुड़, सत्तू की लोई लोकती है। ललिता देखती है और आँखें फेर लेती है। ऐसे दृश्य देखकर जाने क्यों उसे ग्लानि होती है। आदमी आदमी को इतना बेइज्जत करे... उसको नहीं सुहाता। छाती में कुछ गड़ता है शूल की तरह। मायके में बिनोवा भावे के शिष्य रह चुके उनके बाबूजी तो हमेशा उसका साथ देते मगर माँ उलाहने देती रहती थी उठते-बैठते - "तेरे दिमाग में किताबें ठुँस गई हैं! कभी इन मरे काले अक्षरों से बाहर निकल कर भी देख, नून-तेल का भाव पता चले जरा! दुनियादारी भी कोई चीज होती है लल्ली!" वह 'कन्फेशन ऑफ द क्वीन' में फ्रांस की महारानी मारी एंटोनेट की कहानी पढ़ते हुए अपने कमरे की खिड़की से बाहर देखती - "इफ पियुपल डोंट गेट ब्रेड टू इट, लेट देम इट केक।।" उसे गिलोटिन में कट कर इधर-उधर लुढ़कते हुए सैकड़ों नरमुंड दिखते। वह सिहर कर अपनी किताब बंद कर एक तरफ पटक देती। मगर उसके शब्द उसका पीछा नहीं छोड़ते - "जब लाखों-करोड़ों भूखे-नंगे लोग एक साथ उठ खड़े होंगे, अन्याय के ऊँचे महल-अटारी ध्वस्त हो जाएँगे...

विचारों का बोझ सबसे बड़ा बोझ होता है, इसलिए वह अपनी थकान को समझती है। लोग इसे उसके उम्मीद में होने के साथ जोड़ कर देखते हैं मगर वह इसे नाउम्मीदी का

हश्र मानती है। मन का आकाश होना और देह का पिंजरा होना उसका असली संताप है। और ऊपर का बोझ यह कि उसे चीखना नहीं आता। जो रो-कोस कर अंदर का मैल धो-बुहार लेते हैं वे हल्के हो जाते हैं। मगर वो तो अपने ही जाल की मछली है, अपने ही काँटे में बिंधी है! उसकी मुक्ति कहाँ! लोग देह भर गहने में उसका मलिन, उदास रूप समझ नहीं पाते। मगर वह अपना असली रूप चीन्हती है। मन को सोने की आभा नहीं, भीतर की हुलास निखारती है। वह कहाँ से लाए यह सब! अपने सुख के छोटे-से नीड़ में सुरक्षित बैठ कर फूलमती जैसी औरतों के अपरिमित दुखों का साक्ष्य बनने के लिए वह अभिशप्त है। जब मन करता है सब तोड़-दल कर ढेला-ढेला कर दे, मौन का कुलुप मुँह में जड़ कर वह अपनी कोठरी की चारदीवारी की सुरक्षा में आ छिपती है।

फूलमती अपढ़ है लेकिन कितनी जहीन है। आँख उठते ना उठते इशारा समझ जाती है, जमीन पर कोरी उँगली से घर-गृहस्थी का सारा हिसाब कर लेती है। उसे सोहर, कजरी, चैती के साथ फिल्मों के हजार गीत आते हैं। ललिता के आँगन में ट्युशन के लिए जमा हुए बच्चों से सुन-सुन कर उसे दो तक का पहाड़ा और ढेर सारी कविताएँ जबानी याद हो गई है। ललिता किसी बच्चे से सवाल करती है और अपनी उछाह में जवाब देती है फूलमती! इसके लिए ललिता उसे कितनी बार डाँट चुकी है कि बीच में जादा बोला नहीं करते। मगर उस फुहड़िया पर इसका कोई असर नहीं होता। उस समय तो दाँत चिंयार देती है मगर दूसरी बार फिर वही हरकत।

क्या उमर रही होगी उसकी। यही कोई चौदह-पंद्रह साल। खिच्चा भुट्टे की तरह उसके भीतर से बचपन का दूध पूरी तरह सूखा नहीं था अभी। अक्सर गोयठा डालना या ढेकी कूटना बीच में छोड़कर गाँव के बच्चों के साथ जंगलों में भाग जाती। कभी हड्डा-बिढ़नी पकड़ कर उन्हें सुतली से बाँध हवा में उड़ाती फिरती तो कभी किसी के धूप में डाले अचार-कसौंझी चुराकर खाती। एक बार जब उनकी बानर सेना ने काना चौबे के भदैया मक्के के खेत को जंगली सूअर के माफिक खोद कर रख दिया था, उसकी शिकायत पर बिगेसर ने बाँस की करची से उसे धुनिया की तरह धुन दिया था - "चोरी-छिनरपना त तुम्हारा बंदे नहीं होता है! भर दोपहर कट्ठा के कट्ठा खेत ताम के आते हैं। भूख, गर्मी, घाम से माथा गनगनाता रहता है। ऊपर से रोज कोनो न कोनो से इसका झगरा फरियाना! पता नहीं दिमाग कब ठिकाना लगेगा!"

मार खाकर फूलमती संझा-बाती तक सरकंडे की ढेर पर बैठी काना चौबे को कोसती-गरियाती रही थी - 'अरे मुदइया, खचरा, हरामी का जना! कोन खजाना खाली कर दिए उसका? दू गो मकई तोड़ लिए त परान जाता है! एतना मार खिलाया भंड़ुवा! कोढ़ी फूटेगा साला को! गू गींज-गींज कर मरेगा।"

लहेरिन सास ने ही आकर फिर उसका कन्ना-रोहट बंद करवाया था - "बाभन को गाली देती है! गाँव में रोटी-पानी बंद करवाएगी लबरी! चल अंगना के भीतर!" चुप होने के बाद भी वह देर तक ढोर-डंगर की तरह सोसियाती रही थी।

मगर दूसरे दिन ललिता के पास गई तो फिर से तरोई का एकदम टटका पीला फूल! बनफूल तेल से चुपड़े बालों में लाल फीता और कपार जोड़कर सिक्का भर सेनूर का टीका। बहुत खुश! ललिता कभी कहती इतना बड़ा टीका! तो वह हँस पड़ती - 'ई तो जनाना सब का सिंगार है।' आज ललिता ने पहले दिन के बाबत पूछा तो हँस कर टाल गई - "जाने दो दीदी! जलनडाही सास... कुछ न कुछ करबे करेगी। मरद के साथ फाओ में मिली है तो सहना ही है!"

ललिता ने उसके हाथ पर पड़ी नीली धारियों और घावों पर हल्दी-चूना लेपा था। थोड़ी देर चुप रहकर फूलमती रोने लगी थी। उसे इस तरह भरभरा कर रोते देख ललिता घबरा गई थी - "अब रोती काहे को है? का कर दिए हम?"

बड़ी देर बाद नाक सिनकते हुए तलहथी से आँखें पोंछते वह किसी तरह बोली थी - "दीदी! अब ई प्यार-दुलार सहता नहीं! बस मार-दुत्कार का आदत हो गया है। बचपन में माय मर गई थी। बाप तीन महीने के भीतर सौतेली माय ले आया। समझो चुरईल का दुसरा रूप! ऊ हमको उठते-बैठते सताती और बाप भट्टी से दारू ढकोर कर पलानी में बेसुध पड़ा रहता। एक भाई, सो भी साहूकार का पतलचट्टा! ऊपर से गांजाखोर भी! बचपने से खराब संघत में पर गया था। दस साल के उमर में ही सौतेली माय ने रेजा-कामिन के काम में लगा दिया था। तो बस हाड़ तोड़ काम, मार आउर दुख। बस एही तो मिला है जिनगी भर... उहाँ चाहे इहाँ...

ललिता का मन गीला हो गया था उसकी कहानी सुन कर। ऐसी ही कितनी फूलमतियाँ इस जमीन पर आए दिन जीवन का आँख भर सपना लेकर हरियाती और धीरे-धीरे ऊसर होती जाती हैं... नई उमर की उछाह में गुड्डी बनकर आकाश की ओर लपकती हैं और फिर सूत कट कर नीचे आ गिरती हैं। उसे अपनी सहेली मधुमिता याद आती है। कुछ-कुछ ऐसी ही - फूलमती जैसी - बुरे लक्षणों वाली! भर दुपहरी छत पर चढ़ कर गुड्डी लूटना, चबर-चबर बोलना, बतीसी निकाल कर हँसना। ऊपर से दो गरम बोरसी जैसी आँखें! तरेर कर देखती थी सीधे-सीधे सबकी आँखों में। हर बात का उल्टा जवाब! माँ कहती थी उसके साथ नहीं रहना। ठीक नहीं वो। तुझे गलत-सलत बातें सिखाएगी। मगर ललिता को उसकी बातें अच्छी लगती थी। खास कर उसकी अँगीठी जैसी आँखें। वही आँखें शादी के बाद साल भर में ही जैसे बुझ गई थीं... सोचकर आज भी ललिता

का मन बोझिल हो उठता है। मुंडेर की चंचल गौरैया किस तरह घर-गृहस्थी के पिंजरे में उड़ना तो दूर, चहकना तक भूल जाती है! गौने के बाद मधुमिता बार-बार भाग कर मायके आती रही, माँ-बाप, भाई से आसरा माँगती रही, मगर सबने समझा-बुझा कर उसे हर बार ससुराल के नरक में दुबारा भेज दिया। ललिता को उसकी गोरी देह पर उसके बर्बर, विकृत पति के दाँत-नाखूनों के साथ सास-ननद के द्वारा दागे गए जख्म के दाग याद आते। हर बार ससुराल लौटते हुए मधुमिता की मूक अनुनय से कातर आँखें, मुड़-मुड़ कर पीछे देखना - जाने किस आस से... ऐसे समय में ललिता को महसूस होता था वह कितनी असमर्थ, असहाय है! उसके जाने के बाद दिनों तक अपने कमरे में पड़ी वह रोती रहती थी। लगता था, हाथ-पाँव में जंजीर पड़े हैं। जब भगवान ने पंख नहीं दिए तो मन को चिड़िया क्यों बनाया, क्यों छाती भर आकाश दिया...

इसी तरह शादी के बाद दो साल बीते थे और आखिर मधुमिता के ससुराल से वह चिट्ठी आई थी जिसका आना लगभग तय ही था - मधुमिता अपने ससुराल में खाना बनाते हुए स्टोव के फटने से जल कर मर गई! मधुमिता के माँ-बाप को उसके अंतिम दर्शन तक नहीं करने दिया गया था। सब जानते थे, मधुमिता को मार दिया गया है मगर क्या हुआ? कुछ भी तो नहीं... बस एक और लड़की... लड़कियों की इस देश में कोई कमी थोड़े ना है! साल घूमते न घूमते मधुमिता के पति ने फिर शादी रचा ली थी। जाने उस दूसरी लड़की के साथ क्या हुआ! ललिता अक्सर सोचती थी, मधुमिता की मौत के जिम्मेदार क्या सिर्फ उसके ससुराल वाले ही थे? अन्याय दुनिया करती है और खुश रहती है, उस पर तो बस अपनी चुप्पी भारी पड़ती है!

फूलमती को उस दिन चुप कराकर ललिता ने इसके बाद उसे खाने के लिए छोवा गुड़ के साथ मूढ़ी दिया था। वह कुएँ के जगत पर चुक्की-मुक्की बैठी मुँह भर-भर कर खाती रही थी। जैसे दिनों से कुछ खाया ना हो। ललिता के पूछने पर उसने कहा था सास ठीक से खाना नहीं देती। कल रात भी नहीं दिया। उसे गोहाल में सोना पड़ा नई वाली बछिया के पास। ललिता के कुरेद कर पूछने पर लज्जा से सर हिलायी थी - 'हाँ! फलानाजी प्यार करते हैं। कितना भी मारे-पीटे, रात को जरूर... ललिता समझी थी - वही मर्दों वाला प्यार जो अधिकतर औरतों के हिस्से आता है..."

इसके कुछ दिन बाद चूड़ियों का खाँचा ले कर सुबह-सुबह गाँव की फेरी पर निकलती हुई उसकी सास ने बताया था, फूलमती के पाँव भारी हैं। सुनकर जाने क्यों ललिता खुश नहीं हो पाई थी। उसे फूलमती का साड़ी को धोती की तरह बाँध कर तपती दुपहरी में गाँव के बच्चों के साथ शीतला मैया के थान के पीछे गुल्ली-डंडा, कंचा खेलना या लट्टू नचाना याद आया था। उस दिन राम सिंघासन के खेत से बूँट झंगरी निकालकर

खाते हुए फिर पकड़ी गई थी। अपनी इन हरकतों के कारण कितनी बार पिट चुकी थी वह! अब क्या खेल पाएगी कभी इस तरह से! उसे बच्चे की नहीं, गुड़ियों की जरूरत है अभी! एक और कच्चा घड़ा टूटा, एक और बचपन गया...

ललिता ने अपने पति से रात को सोते समय यह बात कही तो वह टाल गया - इस में नई बात क्या है। होती रहती है। फिर हँस कर उसकी नाक दबाई थी - तुम भी तो माँ बनोगी! ज्यादा सोचा मत करो... ललिता ने प्रतिवाद करने की कोशिश की थी - दोनों एक ही बात है का! उसकी उमर भी तो देखिए... बच्ची है! सुन कर उसका पति करवट बदल कर सो गया था - 'इन गाँव-जवार के अनपढ़ लोगों से क्या उम्मीद करती हो! जिंदगी किताबी नहीं होती लाली! जमीन पर उतरो...' ललिता एक बार फिर चुप रह गई थी। क्या उसके जीवन में ये किताबें सिर्फ पढ़ कर रख देने के लिए हैं! अलमारी की शोभा बढ़ाने के लिए...

ज्यादा शिकायत करती तो पति कहता खुद ही तो इस बज्जर गाँव में रहने की जिद पर अड़ गई और अब परेशान होती हो! उसकी बात सुन कर ललिता को चुप हो जाना पड़ता है। बात सही है। शादी के बाद उसका पति शहर चला जाना चाहता था। उसे लगता था पटना शहर की लड़की होने के कारण ललिता को इस गाँव में अच्छा नहीं लगेगा। मगर उसके पिता के मरने के बाद ललिता उनके स्कूल की जिम्मेदारी उठाने की जिद पर अड़ गई। ललिता के ससुर इस गाँव में कई सालों से एक मिडिल स्कूल चला रहे थे।

शादी के बाद उनके जीवन के कुछ दिन बहुत सुंदर बीते थे। कहाँ-कहाँ घूमने गए थे दोनों। पति चाहता था कश्मीर जाना मगर वह पहले अपना बिहार ही अच्छी तरह घूम कर देखना चाहती थी। लोग दुनिया-जहान देख लेते हैं, बस अपनी जगह से अनजान रह जाते हैं! हाजीपुर जिले में उनका गाँव पड़ता है। इसके उत्तर में मुज्जफ्फरपुर, दक्षिण में पटना, पूर्व में समस्तीपुर तो पश्चिम में सारन। इन इलाकों के सभी नामी जगह उन्होंने देखे थे। गणतंत्र की धरती वैशाली के स्तूप, सीता मैया की जन्मभूमि और उससे लगा जनकपुर धाम जो नेपाल में पड़ता है। संयोग से जब वे वहाँ गए, विवाह पंचमी का मेला लगा था। राम-जानकी का वैसा विवाहोत्सव फिर उसने कभी नहीं देखा... केला, लीची, आम के बाग, हेला बाजार के पास रामभद्र में रामचौरा मंदिर, गंगा-गंडक के संगम पर कोनहरा घाट... इस घाट पर होती पूजा के दृश्यों ने जहाँ मन को मोहा था वही जलती चिताओं ने भीतर विषाद भर दिया था। जीवन-मृत्यु के धूप-छाँही रूप ने इस तीर्थ स्थान की स्मृति को अद्भुत बना दिया है उसके लिए।

गंगा किनारे राजासन में स्थित महादेव मठ देखने के बाद वे हाजीपुर माहनार रोड पर पड़ने वाले जाधुआ में मामू-भानजा मजार पर भी गए थे। उस मजार पर बांधे गए धागे के साथ की गई मन्नत अब जाकर कबूल हुई थी... अपने भरते हुए जिस्म की तरफ देख कर ललिता अक्सर सोचती है। गंगा-गंडक के संगम पर पैगोडा स्टाईल में नक्काशीदार लकड़ी से बने नेपाली मंदिर की दीवार पर उकेरे गए प्रेमी युगल के केलिरत दृश्यों की छवि तो अब तक उसके मानस में खिंची हुई है। नई-नई दुल्हन के रूप में इन्हें देख वह अपने पति के सामने कितनी लजाई थीं! पातालेश्वर मंदिर तथा बटेश्वरनाथ मठ जाना हो नहीं पाया था उस बार। बहुत प्राचीन शिव मंदिर। उसके पति ने कहा था वहाँ फरवरी-मार्च में मनाये जाने वाले बसंत पंचमी में उसे घुमाने ले जाएँगे। महाशिवरात्रि का एक माह तक चलने वाला मेला भी दिखाएँगे। उस समय ससुरजी की अचानक से तबियत बिगड़ने से उन्हें यात्रा के बीच से ही गाँव लौट आना पड़ा था। इसके कुछ दिन बाद ही उनका देहांत हो गया था।

दिन-दिन देह से भारी होते हुए उसने कभी अपनी छत से तो कभी खिड़की से फूलमती को गोबर पाथते, जंगल से लकड़ियाँ बीन कर लाते या अपनी सास, पति से पिटते-रोते, झगड़ते हुए देखा था। उसका उनके यहाँ आना भी इन दिनों बहुत कम हो गया था।

कार्तिक महीने में बारिश के थिराते-थिराते छठ की धूम मचने लगी। ललिता की सास व्रत रखती हैं। उसके पाँव भारी होने से उसकी सास ने फूलमती को मदद के लिए बुला लिया था। गर्भ के शुरुआती दौर में वह अभी तक हल्की-फुल्की थी। झट से उनकी बात मान गई थी। 'नहाए-खाए' के दिन एकदम भोरे-भोर सिया सुंदरी में डुबकी लगा कर घर के काम-काज में हाथ बँटाने हाजिर हो गई थी। उसका उत्साह देखते बनता था। घर का भीतरी आँगन गोबर से लीपा था, पूरा इलाका झार-झूर कर साफ किया था। पूजा के हर काम में उसका यूँ हाथ बँटा सकना ललिता को अच्छा लगा था। छठ सही मायने में लोक पर्व है, जिसमें सबका बराबरी का हिस्सा होता है। दूसरे त्योहारों की तरह ये बाभनों या ऊँची जात वालों की बपौती नहीं। इसमें उनकी धौंस नहीं चलती। दहलीज पर रंगोली डालती हुई फूलमती मुझे अपनी हुलस में समझाती रही थी - "एक्को दिन सूरज देवता न उगे तो दुनिया जहान में अन्हार छा जाएगा। धरती से जीवन खतम हो जाएगा। देखा जाय तो उ सबसे बड़ा भगवान हुए, उनका पूजा खूब मन लगा के करना चाहिए। तभिए दीन-दुनिया में तरक्की होगा।" ललिता कौतुक से भर कर उसकी बातें सुनती रही थी। सच, हमारे देश के ये अद्भुत लोक पर्व अपने छोटे-छोटे नियमों और परंपरओं से एक साधरण से साधारण अपढ़ मनुष्य को भी

जीवन-जगत की बड़ी-बड़ी गंभीर, गूढ़ बातें कितनी सहजता और आसानी से सिखा जाते हैं!

'खरना' के दिन मेरी सास ने सभी व्रतिनों की तरह सारे दिन का उपवास रखा था। शाम को पूजा के बाद खीर, रोटी और केले का नेओज काढ़ा गया था। फूलमती अपने हिस्से का प्रसाद पोटली में बाँध कर खुशी-खुशी घर ले गई थी।

छठ व्रत के कठिन नियमों और ढेर सारे कामों के बीच दूसरे दिन ना जाने क्यों फूलमती मदद के लिए नहीं आई थी। अपने छत्तीस घंटे के लंबे निर्जला उपवास के दौरान नहाते-धोते, पूजा-पाठ करते और रातों को फर्श पर कंबल बिछा कर सोते हुए ललिता की सास बीच-बीच में बड़बड़ाती रही थी - 'इनके लिए जितना भी करो, ई छोटजतिया लोग कभी उपकार नहीं मानता।' एक-दो बार किसी को फूलमती की खबर लेने भेजा भी तो उसने आकर बताया मकान में ताला पड़ा है।

बहुत मुश्किल से सब ने मिलकर किसी तरह पूजा संपन्न करवाया। प्रसाद के लिए ठेकुआ बनाना, कसार बाँधना... फिर साँझ को घाट जाकर अस्त होते सूर्य को अर्घ्य चढ़ाना... रंग-बिरंगे पताकाओं से सजे नदी के घाट, रोशनियाँ, बजते लाउडस्पीकर, लोगों की भीड़ और औरतों के सम्मिलित कंठ से गाए जाने वाले गीत - "ऊ जे केरवा जे फरले घवोद से... ओ पर सूगा मेरराए..."

ललिता काम करते, सजते-सँवरते और सब के साथ मिल कर हँसते-गाते ही थक कर चूर हो गई थी। देर रात उसके पति और दोनों देवर जब घाट पर हाथी बैठाने के लिए जाने लगे तो वह चाह कर भी जा न सकी। ऐसा शायद पहली बार हुआ था वर्ना वह बचपन से इस त्योहार के हर काम में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेती रही थी। खास कर सुबह के अर्घ्य से पूर्व देर रात को घाट पर हाथी बैठाने को ले कर वह बहुत उत्साहित रहा करती था... कितना सुंदर और अद्भुत दृश्य होता है वह... पाँच पाँच गन्नों के सुरक्षा घेरे के बीच सिर पर मिट्टी के दो-दो कलश सँभाले किसिम-किसिम के हाथी महाराज... हाथी और कलश के कांधे पर झिलमिलाते दीप... और इनके चारों तरफ सजे मिट्टी के प्यालों में छोटे-छोटे ठेकुए, नन्हे-नन्हे कसार, चीनिया केले, कागजी नींबू...। वातावरण में फैलता धूप और अगरबत्ती का पवित्र सुवास... रोशनी, खुश्बू और उत्साह का दूर-दूर तक फैला एक अंतहीन साम्राज्य और गंगा के भाप उठते पावन जल में हिलकोरे लेती इस दृश्य की सुंदर छायाकृतियाँ... तीन दिन लंबे इस पर्व का यह दृश्य उसे सबसे ज्यादा मनमोहक लगता है, लेकिन आज उसकी हिम्मत नहीं हुई... अब वह सीधे सुबह के अर्घ्य के समय ही जाएगी।

सूरज को अर्घ्य चढ़ा कर सुबह घाट से लौटते हुए फूलमती के घर के बाहर भीड़ देख कर ललिता अपनी सास के साथ रुक गई थी। उसने देखा - फूलमती आँगन में लोट-लोट कर विलाप कर रही थी। उसके जटा जैसे बाल धूल में लिथड़े हुए थे। बाद में पता चला था, राम सिंघासन के केले के बगान का काम छोड़कर बिगेसर दो पैसे ज्यादा कमाने के लोभ में फतुहा की किसी दवा फैक्ट्री में काम करने लगा था। राम सिंघासन की पूछताछ के डर से फूलमती भी अपनी सास के साथ कई दिनों से गाँव से भागी हुई थी। परसों सुबह-सुबह राम सिंघासन के लोगों ने बिगेसर को कहीं से ढूँढ़ कर बहुत बुरी तरह पीटा था। उसकी हालत खराब थी। किसी ने उसे हाजीपुर सदर अस्पताल पहुँचाया था मगर वहाँ उसकी हालत देखकर डॉक्टर ने उसे पी एम सी एच ले जाने के लिए कह दिया था। महात्मा गांधी सेतु पर अठारह घंटे से जाम लगा था। एंबुलेंस का सायरन भी कोई काम नहीं आ सका था। बीचे रास्ते बिगेसर मर गया। खून बहुत बह गया था उसका। लेकिन जाम ऐसा कि बिगेसर की लाश भी दूसरे ही दिन घर आई थी। लाश का चेहरा देख कर सब डर गए। काला बिगेसर एक दम फीका हो चला था, देह में एक बूँद खून नहीं! आँख भी जैसे उबला अंडा!

बिगेसर की माँ छाती कूट-कूट कर कभी अपनी बहू को कोस रही थी तो कभी बैन लगा कर रो रही थी - "अभगला! दू पइसा जादा के लोभ में गाँव छोड़ कर गया... केतना बार कहा अपना बूढ़ महतारी का कहना मानो, पर नही! राम सिंघासन के आदमी-जन से चोरा-नुका के केतना दिन रहता... ऊ का किया न किया इस बात में कुच्छो नहीं रखा है... जो दोस होता है गरीबे का होता है! दू रोटी सधाने के लिए जनम भर का जुआ गले में डालना पड़ता है। लो अब जिनगिए का जुआ कान्हा से उतर गया। एही लिए त कह रहे थे कि कहीं जाय से कुछ न होगा! बचना चाहता है तो चुपचाप जा कर ओकर गोड़ में नाक रगड़ कर थूक चाट ले...

दो दिन बाद शहर से लौटकर त्रिभुवन ने बताया था बिगेसर के काम छोड़ कर जाने से राम सिंघासन बहुत नाराज था। उसने थाना में उसके खिलाफ चोरी करके भागने का रिपोर्ट लिखवा दिया था और अफवाह भी फैला दी थी कि बिगेसर डाकू बन गया है और डाकुओं के आपस की लड़ाई में ही मारा गया। सुन कर ललिता दंग रह गई थी। खुले आम ऐसा अन्याय-अत्याचार और कहीं कोई सुगबुगाहट तक नहीं। पूरा गाँव अनजान बना अपने-अपने घरों में दुबका हुआ था।

अब हर दो दिन में फूलमती के दुआर पर पुलिस की जीप आ कर रुक रही थी। देर-देर तक पूछताछ और राम सिंघासन की कोठी में थाना स्टाफ की दावत। कुछ ही दिनों में फूलमती के आँगन से उसके दो खस्सी और दस मुर्गे-मुर्गियाँ गायब हो गईं। एक दिन

फूलमती की सास को अकेली देख कर ललिता ने फूलमती के बारे में पूछा तो उसने बताया - 'फूलमती को थानावाला सब पूछताछ के लिए सुबह-सुबह जीप में उठा ले गया है'। उस दिन फूलमती अपने घर नहीं लौटी थी। सारा गाँव उसके नाम पर थू-थू कर रहा था। दूसरे दिन ललिता ने उसे अपने आँगन में चुपचाप बैठे हुए देखा था। उसके बार-बार बुलाने पर भी फूलमती ने कोई जवाब नहीं दिया था। उस समय फूलमती का चेहरा आषाढ़ के मेघ-सा काला दिख रहा था। देख कर ललिता का दिल बैठ गया।

इसके बाद फूलमती को जब-तब थाना बुलाया जाने लगा था। उसका बच्चा भी नुकसान हो गया। गाँव के अधिकतर लोगों से उनकी बोलचाल बंद हो गई थी। गाँव वालों ने उन्हें एक घर करके रख दिया था। ललिता का सातवाँ महीना चल रहा था। उसकी सास उसे फूलमती से ज्यादा मेल-जोल रखने से मना करती रहती थी। ललिता का वैसे भी कहीं आना-जाना बहुत कम हो गया था। किसी तरह अपना स्कूल चला रही थी।

फूलमती को लेकर आए दिन गाँव में कोई ना कोई कहानी सुनने को मिलती। पनभरियाँ चटखारे ले-लेकर उसकी बातें एक-दूसरे से साझा करतीं तो शाम को गाँव के चौपाल में भी मर्दों के बीच उसी की कथा-कहानी गुलजार रहती। कोई कहता फूलमती डायन विद्या सीख रही है। रोज रात गाँव के श्मशान में जा कर पूरी तरह नंगी होकर नरमुंडों की ढेर पर बैठ कर प्रेत साधना करती है, सर के बल उल्टी खड़ी हो कर पाँव के दोनों तलवे में दीये बाल कर भोर रात तक नाचती है... जितने मुँह उतनी बातें।

एक दिन गौरी प्रसाद की बहू बीच पंचायत घूँघट काढ़ के आ खड़ी हुई कि फूलमतिया उसके दुआर पर रोज सुई से टाँका हुआ नींबू, लत्ता का गुड़िया और सेनुर फेंक जाती है। इसी से उसका बऊआ बीमार पड़ा है और ठीके नहीं हो रहा। दो और जनानियों ने भी यही शिकायत की। सरपंच ने फूलमती की सास को बुलाकर धमकाया। सास ने सब सुन घर जाकर फूलमती की रही-सही तोड़ कर मार-कुटम्मस की, पूरे गाँव ने बड़े चाव से एक डायन को पिटते हुए देखा। उस दिन ललिता डॉक्टर को दिखाने शहर गई हुई थी। दूसरे दिन खबर सुनकर दोपहर के निर्जन में सबकी आँख बचाकर उसके घर जा कर देखा था, फूलमती एक कोने में गठरी बनी पड़ी हुई थी।

बुखार से तमतमाता हुआ चेहरा, पूरी देह में लाल-नील धारियाँ... ललिता के बार-बार पुकारने पर भी आँख नहीं खोल पाई थी। पड़ी-पड़ी गोंगियाती रही थी। फूलमती की

सास पलानी पर बैठ कर बड़बड़ा रही थी - 'ई भतरखऊकी, चुरईल हमरा बेटा के त खाईए गई, अब हमको भी खाईए के छोरेगी..." ललिता का जी कसैला हो आया था। पंद्रह साल की एक बच्ची डायन, पतुरिआ, भतरखऊकी और जाने क्या-क्या... उजड़ी माँग, रूखे बाल, बिवाई पड़े पाँव और सारे शरीर पर मार-पीट के निशान। एक बार ललिता ने उससे पूछा भी था कि वह अपने नैहर क्यों नहीं चली जाती। सवाल सुन कर फूलमती अजीब ढंग से मुस्कुराई थी - "कहाँ जाएँगे बहूजी! औरत जात का कहीं कोई घर नहीं होता, बस एक ठेकाना होता है, मिला तो मिला..."

ललिता अपने कमरे में बैठी-बैठी फूलमती की सास की गालियों का पथार बिछाना सुनती रहती - "राँड़ होकर भी इ खचरी का सौक कम नहीं होता। छापा का साड़ी चाहिए, केश में गमकौआ तेल चाहिए! चटोरिन का जीभ भी कम लम्मा नहीं है। पूरा डेढ़ गज का है! लपलपाता रहता है रात-दिन!" पहले रात-दिन बोलने-झगड़ने वाली फूलमती इन दिनों एकदम चुप हो गई थी। सर झुकाकर या तो अपने पैर के अँगूठे से आँगन की मिट्टी खोदती रहती या काठी के झाड़ू बाँधती रहती। उसकी हरदम दिपदिपाने वाली आँखों के साथ जैसे उसकी जुबान भी गूँगी हो गई थी।

प्रसव से एक महीने पहले ललिता अपने मायके चली गई थी। इसके बाद उसे पता नहीं चला उसके पीछे कितनी बार कितनों ने फूलमती को भिनसार दिशा-मैदान जाते हुए या मवेशियों के लिए घास काटते हुए कभी नासनी के खेत में तो कभी तरोई के मचान के नीचे खींच लिया था; गाँव वालों ने कभी गाँव में बीमारी फैलने के कारण तो कभी किसी के बच्चे के बीमार पड़ जाने के कारण उसे डायन कह कर पीटा था, उसके बाल काट लिए थे या उसे पूरे गाँव में मुँह काला करके घुमाया था। अपने मायके में प्यार-दुलार के बीच रहते हुए ललिता को रह-रह कर उसकी याद आती मगर वह करती भी तो क्या। बस अपना मन मसोस कर रह जाती।

एक सुंदर, तंदुरुस्त बच्चे को जन्म देने के छ्ह महीने बाद ललिता अपने ससुराल लौटी थी और लौट कर एक अजीब नजारा देखा था - फूलमती की झोंपड़ी के भीतर-बाहर लोगों की उमड़ती हुई भीड़ और 'फूलमती मैया की जै' का गगनभेदी उद्घोष! सास ने बताया था, फूलमती पर देवी आने लगी है! दूर-दूर से लोग उसके दर्शन करने आते हैं। वह सबकी मन्नत पूरी करती है, हारी-बीमारी की अचूक औषध देती है। जो एक पाँव पर आता है वह दो पाँव पर लौटता है देवी के अस्थान से। उस दिन एक मुर्दे को जिंदा कर दिया दो लात में! ललिता की सास ने बताया था फूलमती मैया के आशीर्वाद देने का ढंग भी निराला होता है। ना फल ना भभूत! बस लात और

गालियाँ। ऐसी-ऐसी गंदी गालियाँ कि सुनने वालों के कान लाल हो जाते हैं। सबको माई के सामने जा कर साष्टांग लेटना पड़ता है।

जिस पर माई प्रसन्न होती है उसके माथे, पीठ, कंधे पर धमाधम लात मारते हुए गाली-गलौज से उसके सात पुस्तों का श्राद्ध करती है फिर उसका झोंटा पकड़कर अपने आँगन से बाहर निकाल देती है। सिर्फ छोटे बच्चों को अपनी गोद में लेकर झुलाती है और लोरी गाती है। फूलमती मैया के लात का प्रसाद पाकर भक्त जन धन्य हो जाते हैं। मैया को चढ़ावे में सिर्फ लाल साड़ी, कुमकुम और बेला के फूल की वेणी चढ़ाई जा सकती है। मिठाई में गर्म बुंदिया और गुड़ की जलेबी। मैया रुपये-पैसे को हाथ भी नहीं लगाती। भक्त जन उनके दुआर के बाहर रेजगारी की ढेर लगा कर जाते हैं। सारी रात मैया की कोठरी से सिक्कों की खन-खन और खिल-खिल हँसी की आवाज सुनाई पड़ती है। फूलमती के इस नए अवतार की कथा सुन कर ललिता का चेहरा उजला हो उठा था - देवी के दर्शन उसे भी करना है।

दूसरे दिन गुरुवार था। यह देवी का दिन माना जाता है। नहा-धो कर लाल साड़ी, वेणी और सिंदूर की डिब्बी ले कर ललिता अपने बच्चे के साथ फूलमती मैया के दर्शन करने सुबह-सुबह उसकी झोंपड़ी गई थी। उस समय फूलमती का घर-आँगन दूर-दूर से आए हुए श्रद्धालुओं से खचाखच भरा हुआ था। जिस समय ललिता फूलमती की कोठरी में दाखिल हुई थी वह अपने पैरों के नीचे दंडवत पड़े हुए राम सिंघासन को लात से कोंचते हुए गंदी-गंदी गालियाँ बक रही थी। उस समय कितना भयंकर हो रहा था उसका रूप - जब फूल-सी चढ़ी हुईं लाल-लाल आँखें, सिंदूर से लिसरा हुआ कपाल और खुले हुए मेघ-से काले, घने बालों की जटा में गुँथी ताजे बेला की महकती हुई वेणी! साड़ी भी टह-टह लाल! देख कर ललिता सिहर उठी थी। राम सिंघासन को कोढ़ फूटा था और उसी से निजात पाने की आशा लिए वह देवी के भीषण पदाघात सहता हुआ उनके श्री मुख से बरसने वाली भयंकर गालियों का भक्ति भाव से श्रवण करता हुआ दाँत भींचे पड़ा हुआ था। भीषण प्रहार से अब तक उसका पूरा मुँह सूजकर कोहड़े की तरह दिख रहा था। दोनों आँखें मुँद कर प्रायः बंद हो गई थीं। सारे लोग जिनमें थाना दारोगा शंकर पासवान, नीलमणि पांडे, सरपंच की बहू सुमति और जाने कौन-कौन... हाथ में चढ़ावे की डलिया लिए इस अद्भुत दृश्य को चुपचाप भक्ति भाव से देख रहे थे।

राम सिंघासन को पीट-पीट कर बेहाल करने के बाद देवी फिर नकिया कर बोलते हुए झूमने लगी थी - मुझे सिंदूर दे, वेणी दे, लाल साड़ी दे...

ललिता अपने नवजात बच्चे को लेकर आगे बढ़ी थी और उसे झूमती हुई फूलमती की गोद में डाल दिया था। ललिता पर दृष्टि पड़ते ही फूलमती अचानक से चुप हो गई थी। उसके चेहरे पर उस समय ना जाने कैसा भाव था। मानो देवी एकदम से मानवी हो कर जमीन पर उतर आई हो - वही पुरानी फूलमती - गरीब, दुखी, असहाय... ललिता ने उसकी माँग में खूब गाढ़ा करके सिंदूर भरा था, उसके बालों में फूल की वेणी सजाई थी और लाल बनारसी खोल कर उसे ओढ़ा दिया था। सिंदूर-कुमकुम से सजी फूलमती कितनी सुंदर लग रही थी उस समय! अंधियारी कोठरी में उसके रूप का टह-टह इंजोर! दोनों की आँखें मिली थी और एक साथ आँसुओं से भर आई थीं। उसी समय चारों ओर से 'रमरति मैया की जै' का उद्घोष हुआ था। पीछे से ललिता की सास ने अधीर हो कर ललिता को टहोका लगाया था - जल्दी से मैया से वरदान माँग लो बहू - सुख, संपत्ति, आरोग्य... बच्चे को धीरे-धीरे झुलाती हुई फूलमती की ओर गीली, चमकती हुई आँखों से देख कर ललिता ने धीरे से कहा था - मुझे कुछ नहीं चाहिए, मैं अपनी देवी के लिए खुश हूँ।

ललिता की सास पीछे से ललिता के कंधे दबा कर उसे फूलमती के पैरों पर जबरन झुकाने लगी थी। मगर फूलमती ललिता को बीच में ही रोक कर उसके सीने से लग गई थी। उसे अपने अँकवार में लेती हुई ललिता जानती थी, फूलमती चुपचाप रो रही है। उसने उसे और कस कर अपनी बाँहों में समेट लिया था। वह नहीं चाहती थी कि किसी को पता चले फूलमती रो रही है। रोती साधारण औरतें हैं, फूलमती की तरह देवियाँ नहीं!